International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 9, 201-203
Sep 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 4.342

वेदप्रकाश मिश्र
संस्कृत विभागाध्यक्ष, डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)- 495113, भारत

वुल्टि मान्ना
पी–एच. डी. शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)- 495113, भारत

Correspondence
वुल्टि मान्ना
पी–एच. डी. शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)- 495113, भारत

उत्तररामचरितम् में प्रधान रस का अध्ययन

वेदप्रकाश मिश्र, वुल्टि मान्ना

सारांशिका
काव्य की मूलभूत आत्मा कविकृत रस–योजना में निहित होती है। रसानुभूति ही काव्य का चल उपास्य तत्त्व है, जो कवि की सरस्वती का मनोरम विलास है। काव्यशस्त्रियों ने रस शब्द का प्रयोग उस आनन्द की अनुभूति के लिए किया है जो काव्य श्रवण अथवा नाट्य प्रदर्शन से आविर्भूत होता है। आचार्य भरत का इस विषय में कथन है–

न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते इति ।[1]

अर्थात् रस के बिना कोइे नाट्यार्थ प्रवृत्त नहीं होता। आचार्यों में रस की संख्या के विषय में मतभेद रहा है। कुछ आचार्य आठ, कुछ नौ और कुछ रस संख्या दश मानते है। नाट्यशास्त्रकार भरत एवं धनंजय आदि आचार्यों ने आठ नाट्य रस मानते है। नाट्यशास्त्रीय नियम के अनुसार –

एक एव भवेदङ्गी श्रृंगारो वीर एव वा ।[2]

अर्थात् नाट्य का एक प्रधान रस श्रृंगार अथवा वीर होता है। नाट्य में प्रयुक्त अन्य रस अंगरस होते है जो समय समय पर सहृदय के हृदय को आनन्दित करते है। कालिदास आदि सभी कवियों ने इस नियम का पालन भी किया है। किन्तु भवभूति का उत्तररामचरित इस नियम का अपवाद माना जाता है। इस नाटक में भवभूति ने श्रृंगार अथवा वीर को प्रधानता न देकर करुण रस को प्रधानता दी है। इस विषय में संस्कृताचार्य एक मत नहीं है। कुछ लोग इसमें करुण–विप्रलम्भ नामक श्रृंगार रस मानते है तो कुछ यह कहते है कि इसका मुख्य रस करुण है। अव प्रश्न यह है कि उत्तररामचरितम् में प्रधानरस कौन है? करुण अथवा करुण–विप्रलम्भ श्रृंगार। किन्तु यथार्थ तो यह है कि स्वयं भवभूति ने अपने सर्वोत्कृष्ट नाटक उत्तररामचरितम् में 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्' – इस प्रकार व्यक्त करके करुण रस को प्रधान रस के रुप में स्थापित कर अपनी काव्यकीर्ति को हमेश के लिये अमर बना दिया है।

कूटशब्द– अंगीरस, करुण रस, करुण–विप्रलम्भ, मतभेद, पुनर्मिलन।

प्रस्तावना
महाकवि भवभूति की अंतिम एवं सर्वोत्कृष्ट रचना उत्तररामचरित है। यह महावीरचरित का उत्तरार्द्ध है जिसमें राम के राज्याभिषेक के अनन्तर उनके अवशिष्ट जीवन का वर्णन है। यह सात अंको का एक नाटक है। नाटक की रचनाशैली एवं कौशल दिखलाने के लिये भवभूति ने रामायण की मूल कथा में अनेक परिवर्तन किया है जिससे प्रतिभा की प्रखरता का आभास होता है।
भवभूति रसों का निरुपन करने में भी अतिशय चतुर थे। उनके नाटक उत्तररामचरित में विभिन्न रसों की अद्भुत अभिव्यक्ति हुई है किन्तु करुण रस का पूर्ण परिपाक मिलता है। परन्तु करुण रस के पेयोग में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि– उत्तररामचरितम् में करुण नहीं करुण–विप्रलम्भ श्रृंगार मानना चाहिए। क्योंकि करुण–विप्रलम्भ के लिये साहित्यदर्पण में लिखा है–

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमानायते यदैकस्ततो भवेत् करुणविप्रलम्भख्य।।[3]

इसका तात्पर्य यह है कि जहां दो प्रेमी प्रेमिका में से एक के लोकान्तर चले जाने पर अथवा नष्ठ हो जाने पर, किन्तु पुनर्मिलन सम्भव होने पर जब दूसरा दुःखी होता है, विलाप करता है तो वहाँ करुण–विप्रलम्भ श्रृंगार होता है। इसके साथ ही करुण रस के सम्बन्ध में कहा गया है–

पुनरलभ्ये शरीरान्तरेण वा लभ्ये तु करुणख्यः एव रसः।[4]

विनाश या अदृश्यता को प्राप्त प्रेमी– प्रमिका के पुनः न मिलने पर, सदा के लिये सम्भाव्य हो जाने पर करुण रस होता है।

हम देखते हैं कि दोनों में अन्तर स्पष्ट है। करुणविप्रलम्भ में यद्यपि प्रिय वियोग जन्य दुःख होता है, विलाप एवं वेदना भी होती है किन्तु प्रिय–प्रिया के पुनर्मिलन की आशा के कारण उसमें स्थायीभाव रति ही रहता है, वह श्रृंगार का एक भेद है। किन्तु करुण रस में प्रिय–प्रिया के अथवा अन्य किसी भी स्नेही स्वजन के विनाश एवं सदा के लिए वियोग होने पर उसमें शोक स्थायीभाव होगा, अर्थात् उसमें पुनर्मिलन की आशा नहीं रहती किन्तु करुणविप्रलम्भ में पुनर्मिलन की आशा बनी रहती है।

करुण रस न मानने के पक्ष में मत –

- करुण रस न मानने के पक्ष में प्रथम मत यह है कि–

विधिस्तवानुकूलो भविष्यति।[5]

अर्थात् भाग्य तुम्हारे अनुकूल होगा– नाटक में तमसा की इस कथन से सीता को राम के साथ पुनर्मिलन में विश्वास होता है तथा राम को भी लव–कुश को देखने के वाद सीता मिलन की आशा होती है। नाटक के अन्त में राम और सीता का पुनर्मिलन होता है। नाटक सुखान्त है। अतः शोक स्थायीभाव के अभाव के कारण यहां करुण रस मानना उचित नहीं है।

- करुण रस न मानने के पक्ष में दूसरा मत यह है कि–

सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति।[6]

अर्थात् ऋषि तथा देवता लोग सब प्रकार से मंगल करेंगे– आरम्भ में ही नट का इस कथन से राम द्वारा सीता परित्याग सम्वन्धित अमंगल के प्रति पाठक और सामाजिक आश्वस्त है। साथ ही द्वितीय अंक में भी आत्रेयी द्वारा सामाजिक के यह बोध हो जाता है कि सीता सकुशल है और उन्होंने जिन दो बच्चों को जन्म दिया है वे भी बाल्मीकि के पास सुरक्षित है। अतः नाटक सुखान्त है।
इस प्रकार उत्तररामचरित में शोक को स्थायीभाव न माने जाने के कारण यहाँ पे करुण रस की परिपुष्टि सम्भव नहीं है। अतः पूरे नाटक में करुण–विप्रलम्भ श्रृंगार ही है।

करुण रस मानने के पक्ष में मत–

- करुण रस मानने के पक्ष में प्रथम मत यह है कि –

प्रबन्ध के रसनिबन्धन में कोई भी रस अंगी हो सकता है किन्तु प्रबन्ध में मुख रस एक ही होना चाहिए चाहे यह श्रृंगार, वीर, करुण व कोई अन्य रस हो। उत्तररामचरित के प्राचीन व्याख्याकार वीरराघव और घनश्याम भी इस विचार से सहमत है। अतः उत्तररामचरित करुण रस प्रधान होते हुये भी नाटक है– ऐसा कहते है। यह करुण करुण–विप्रलम्भ से भिन्न है। करुण–विप्रलम्भ में रति स्थायीभाव होता है किन्तु करुण एक स्वतन्त्र रस है, जिसमें शोक स्थायीभाव रहता है। उत्तररामचरित में बिभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावों से अभिव्यक्ति होकर शोक ही स्थायीभाव है, जो करुण रस में परिणत हो जाता है।

- करुण रस मानने के पक्ष में दूसरा मत यह है कि –

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने कहा है कि– जहाँ युवक–युवतियाँ, प्रेमी–प्रेमिका, अविवाहित प्रेमी युगल में से एक व्यक्ति कुछ दिनों के लिए वियुक्त हो जाये और बाद में पुनः मिलन हो जाये तो वहाँ करुण–विप्रलम्भ होता है। परन्तु यह नियम उत्तररामचरित में नहीं लागू हो सकता है। क्योंकि राम और सीता न तो प्रेमी युगल है, न युवक–युवती है और न अविवाहित है। वे तो दाम्पत्य जीवन के एक ज्वलन्त प्रतीक है, आदर्श है। डा० कपिलदेव द्विवेदी ने अपनी उत्तररामचरित की टीका में साहित्यदर्पण के इस नियम का प्रत्याख्यान करके करुण रस की स्थिति को ही उचित वताया है।
इस प्रकार दोनों पक्षों की और से भिन्न मत प्रस्तुत किये जा सकते है, परन्तु शास्त्र दोनों पक्षों का समर्थन करते है। किन्तु यथार्थ तो यह है कि महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित में करुण रस का सागर नहीं महासागर है। क्योकिं यह तथ्य छिपाया नहीं जा सकता कि उत्तररामचरित नाटक का अंगी रस करुण रस है। करुण रस का प्रयोग नाटक में प्रारम्भ से दिखलायी देता है। परन्तु तृतीय अंक में करुण रस का प्रयोग चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। राम सीता से कहते है कि–

हा हा देवि ! स्फुटति ह्रदयं ध्वंसते देहबन्धः,
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नधे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।।[7]

अर्थात् तुम्हारे वियोग के कारण मेरा ह्रदय फटा जा रहा है एवं देह का बन्धन विदीर्ण हो रहा है। मैं सारा संसार को शून्य समझ रहा हूँ एवं निरन्तर ज्वालाओं से मेरा शरीर अन्दर ही अन्दर जल रहा है। और तुम्हारे से अलग होने का कारण मेरी अन्तरात्मा घोर अन्धकार में डूव रही है, मैं मूर्च्छित हो जाता हूँ। मैं एसा मन्दभाग्य हूं कि मेरी समझ में कुछ नहीं आता है। यँहा राम का करुण क्रन्दन सामाजिकों के अन्तःकरण में राम के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति उत्पन्न कर देते है। नाट्यशास्त्रकार भरत ने इन भावों को करुण रस के अभिनय में आवश्यक कहा है –

सप्नरुदितैर्मोहागमैश्च परिदेवितैर्विलपितैश्च।
अभिनेयः करुणरसो देहायासाभिघातैश्च।।[8]

स्वयं भवभूति ने इस अंक में ही करुण रस के विषय में अपना मत व्यक्त किया है–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुदबुदतरंगमयान् विकारा
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्।।[9]

अर्थात् नाटक में करुण रस ही प्रधान रस है तथा श्रृंगार, वीर आदि अन्य आठ रसों को वही जन्म देता है ये करुण के ही अलग अलग रुप है। जिस प्रकार एक ही रुप वाला स्थिर जल बुलबुले और तरंगों के रुप में परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रकार एक करुण रस ही अन्य रसों का रुप धारण कर जल के समान ही अपनी नाना प्रकार की आकृतियों को प्रकट किया करता है। यह श्लोक उत्तररामचरित नाटक का बीज मंत्र है। जिसके आधार पर करुण रस का नाटककार द्वारा अद्भूत व्यंजना का दर्शन कराया गया है। हम देखते है कि पूरे नाटक में राम के लिये सीता और सीता के लिये राम सदा के लिये वियुक्त हो गये है। सीता परित्याग के बाद राम के मन में धारणा होती है कि–

क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता।[10]

अर्थात् निश्चित ही जंगली हिंसक जानवरों द्वारा सीता को खाँ लिया गया होगा, लेशमात्र को भी सीता के जीवीत की आशा नहीं है। अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्णमयी आकृति बनाकर उसे सहधर्मचारिणी बनाते है अर्थात् यह स्पष्ट कर देता है कि उनके मन में सीता के पुनर्मिलन की कहीं आशा नहीं है, यही स्थिति सीता की भी है। पृथ्वी, गंगा, वाल्मीकि आदि किसी भी अलौकिक शक्ति ने सीता को राम से मिलन का कभी आश्वासन नहीं दिया है।

इस प्रकार पूरे नाटक में कहीं भी सीता एवं राम को कोई संकेत ऐसा नहीं मिलता है जिससे उन्हें आशा बँधे। षष्ठ अंक में लव–कुश को देखकर कुछ आशा राम को बधती है किन्तु पुनः सीता राम के प्रणय से सम्बन्धित श्लोक जो कुश ने रामायण कथा से सुनाया था–

त्वदर्थमिव विन्यस्तः शिलापट्टोऽयमायतः।
यस्यायमभितः पुष्पैः प्रवृष्ट इव केसरः।।[11]

अर्थात् राम ने गंगा के जल विहार के समय सीतादेवी को लक्ष्य करके यह कहा था कि यह लम्बा चौड़ा पाषाण खण्ड मानो तुम्हारे ही बैठने के लिये विछाया गया है, जिस पाषाण खण्ड के चारों ओर मौलश्री वृक्ष के पुष्प विखरे हुए है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वृक्ष ने स्वयं तुम्हारे लिए पुष्प वर्षा की है– यह प्रसंग राम के मन में सिद्ध कर देते है कि ये वच्चे सीता के नहीं है। राम पुनः आशा छोड़कर अगाध शोक सागर में निमग्न हो जाते है। इस प्रकार राम के लिए सीता सदा के लिए विनष्ट हो चुकी है और सीता के लिए राम सदा के लिए वियुक्त हो चुके है। कहा जा सकता है कि उन दोनों के लिए यह शोक ही है क्योंकि एक दूसरे को मिलने की कोई क्षीण आशा भी नहीं है। अतः नाटक में करुण रस स्वीकार करने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

यतः नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की कथा का अवसान सुखद होना चाहिए, अतः इस नियम को प्रतिपादित करने के लिए नाटककार ने कथावस्तु में परिवर्तन कर राम–सीता के मिलन में कथा का अवसान किया है। यद्यपि कथा का अवसान राम और सीता के मिलन में है, किन्तु वस्तुतः मिलन नहीं हुआ कारण दोनों के ह्रदय में अपने अपने दुःख स्थायी वेदना के रुप में रह गया है। नाटककार भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरित में करुण रस की सत्ता को बहुत ही स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है–

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।[12]

अर्थात् राम के अन्दर करुण रस का प्रवाह है। राम भीतर ही भीतर पुटपाक के सदृश घुटते रहते है।

इस प्रकार पूरे नाटक में करुण रस अनुस्यूत रहने से आलोचकों ने कहा – कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते। अतः उत्तरामचरित में करुण अंगी रस है– यही मानना समीचीन है।

निष्कर्ष– सम्यक् विवेचन करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उत्तररामचरित में करुण रस ही प्रधान रस के रुप में स्थापित हुया है, और महाकवि भवभूति स्वयं करुण रस के आचार्य थे। यद्यपि इस विषय में विद्वतमण्डली एक मत नहीं है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि उत्तरामचरित करुण रस का सागर ही नहीं महासागर है जो प्रत्येक सहृदय को प्रभावित करता है। इस नाटक में तृतीय अंक का प्रारम्भः "करुणो रसः" और समापन "एको रसः करुण एव" से होता है जिससे कवि ने स्पष्ट प्रदर्शित किया है कि इस नाटक का प्रधान रस करुण है।

सन्दर्भ–

1. नाट्यशास्त्र– षष्ठ अध्याय पृः संः 228
2. साहित्यदर्पण– 6
3. साहित्यदर्पण– 3/209
4. साहित्यदर्पण– 3/209
5. उत्तररामचरित– डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, चैखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, पृः संः 284
6. उत्तररामचरित– डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, चैखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, पृः संः 20
7. उत्तररामचरित– 3/38
8. नाट्यशास्त्र– 6/63
9. उत्तररामचरित– 3/47
10. उत्तररामचरित– 3/28
11. उत्तररामचरित– 6/36
12. उत्तररामचरित– 3/1